जैन दर्शन : आधुनिक सन्दर्भ

डॉ० हरेन्द्र प्रसाद वर्मा

आधुनिक युग निर्विवाद रूप से विज्ञान का युग है। अब धर्म और दर्शन का स्थान विज्ञान ने ले लिया है और वही ज्ञान और व्यवहार के क्षेत्र में अग्रगण्य और दिग्दर्शक बन गया है। वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति ने मानव-सभ्यता एवं संस्कृति को नयी दिशा दी है—उसे एक नया विश्व-दर्शन (Weltanschuung) दिया है। आधुनिक युग में वही दर्शन और धर्म उपयोगी हो सकता है जो विज्ञान सम्मत हो—विज्ञान की मान्यताओं के अनुकूल और विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरने में सक्षम हो। जैन-दर्शन या कोई भी धर्म-दर्शन तभी प्रभावशाली हो सकता है जब कि उसकी अभिवृत्ति वैज्ञानिक हो और उसे आधुनिक विज्ञान का समर्थन प्राप्त हो। अतएव आधुनिक सन्दर्भ में जैन-दर्शन की उपयोगिता पर विचार करते समय दो प्रश्न स्वभावतः हमारे समक्ष उठते हैं—(१) क्या जैन-दर्शन आधुनिक विज्ञान की मान्यताओं के अनुकूल है या उसे विज्ञान का समर्थन प्राप्त है? (२) आधुनिक विज्ञान की जो बुराइयां हैं उनसे क्या यह धर्म-दर्शन मनुष्य को त्राण दिला सकता है? उसे चिन्ता और दुःख से मुक्त कर सकता है?

जैन-दर्शन की यह विशेषता मानी जा सकती है कि यह दर्शन अत्यन्त विशाल, सर्वग्राही एवं उदार (Catholic) दर्शन है, जो विभिन्न मान्यताओं के बीच समन्वय करने एवं सबों को उचित स्थान देने को तत्पर है तथा इसका दृष्टिकोण बहुत अंशों में वैज्ञानिक प्रवृत्ति (Spirit) से मेल खाता है। साथ ही साथ, यह बुराइयों को दूर कर विनाश के कगार पर खड़ी मानवता को सुख, शांति एवं मुक्ति का सन्देश भी देता है। यह धर्म-दर्शन इतना पूर्ण और समृद्ध है कि एक ओर विज्ञान के अनुकूल है और दूसरी ओर विज्ञान के अशुभ प्रतिफलों से मुक्त भी है। इसमें विज्ञान की सभी खूबियां वर्त्तमान हैं साथ ही यह उनकी खामियों से भी मुक्त है, बल्कि यह उसकी पूरक प्रक्रिया भी हो सकता है और विज्ञान को मानवतावादी और कल्याणकारी दृष्टिकोण भी दे सकता है। जैन-दर्शन की विशेषताएं निम्नलिखित दो मन्तव्यों से स्पष्ट है—

एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मन्थान नेत्रमिव गोपी ॥[1]

(जिस प्रकार ग्वालिन पहले अपने एक हाथ से मथनी की रस्सी के एक छोर को अपनी ओर खींचती है, फिर दूसरे हाथ की रस्सी के छोर को ढीला छोड़ देती है किन्तु उसे हाथ से सर्वथा छोड़ नहीं देती; फिर शिथिल छोड़े गये छोर को पुनः अपनी ओर खींचती है और इसी प्रकार की क्रिया-प्रतिक्रिया से मथकर मक्खन निकाल लेती है, उसी प्रकार जैनी विचार-मंथन में विभिन्न दृष्टिकोणों को यथा प्रसंग कभी गौण कभी मुख्य स्थान देता हुआ समन्वय रूप नवनीत एवं यथार्थ सत्य उपलब्ध कर लेता है—यह जैनियों की अनेकान्त-वादी दृष्टि है।)

स्याद्वादो वर्त्तते यस्मिन् पक्षपातो न विद्यते।
नास्त्यन्यपीडनं किंचिद् जैन धर्मः स उच्यते ॥[2]

(जिसमें स्याद् का सिद्धान्त है और किसी प्रकार का पक्षपात नहीं है; किसी को पीड़ा न हो—ऐसा सिद्धान्त जिसमें है, उसे जैन

१. श्री मधुकर मुनि द्वारा 'अनेकान्त दर्शन', मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, ब्यावर, राजस्थान, १९७४, पृ० १२ पर उद्धृत।
२. श्री मधुकर मुनि, जैन धर्म : एक परिचय, १९७४, पृ० ३२ पर उद्धृत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म कहते हैं।) अनेकान्तवाद, स्याद्वाद, अहिंसा और अपरिग्रह ये जैन-दर्शन के चार आधार-स्तंभ हैं। विचार में अनेकान्त, वाणी में स्यात्, आचरण में अहिंसा और जीवन में अपरिग्रह ये जैन-दर्शन के आध्यात्मिक चौखटे के चार कोण हैं।

प्रस्तुत सन्दर्भ में हम प्रथमतः यह देखने का प्रयास करेंगे कि—(१) आधुनिक वैज्ञानिक युग की मुख्य प्रवृत्तियां क्या हैं और जैन-दर्शन कहां तक अनुकूल है ? फिर यह भी देखेंगे कि—(२) आधुनिक युग की शोक-सन्तप्त एवं विनाश पर खड़ी मानवता के लिए यह धर्म दर्शन किस प्रकार उपयोगी हो सकता है ?

आधुनिक विज्ञान और जैन-दर्शन :

आधुनिक विज्ञान की प्रवृत्तियां निम्नलिखित हैं—

(१) **अनुभववादी और प्रयोगवादी अभिवृत्ति** (Empericism and Experimentalism)—

आधुनिक युग एवं विज्ञान की प्रवृत्ति अनुभववादी है। विज्ञान उन्हीं चीजों को सत्य और प्रामाणिक मानने को तैयार है जो निरीक्षण और प्रयोग की कसौटी पर खरी उतरती हैं। जो निरीक्षण और प्रयोग के दायरे में न आता हो और विवेक सम्मत न हो उसे विज्ञान मानने को राजी नहीं है। आधुनिक युग में विश्वास (Dogma) और आप्तोपदेश (Authority) का कोई स्थान और महत्त्व नहीं है। विज्ञान ने मनुष्यों को इनके विरुद्ध विद्रोह करना सिखाया है क्योंकि मान लेने वाला कभी जान नहीं सकता है। जानने की प्रक्रिया सन्देह और जिज्ञासा की प्रक्रिया है। जिसमें विश्वास और अविश्वास दोनों का निवारण आवश्यक है।[१] विज्ञान को वही स्वीकार्य है जो प्रयोग और जांच के योग्य हो। प्रामाणीकरण की क्षमता अर्थवत्ता की पहली शर्त है।[२] वैज्ञानिक जागरण के प्रारम्भिक काल में ही रेने डेकार्ट (Rene Descartes) ने यह घोषणा की थी कि हमें किसी वस्तु को विश्वास के आधार पर आंख मूंद कर नहीं मान लेना चाहिए, बल्कि उसके सम्बन्ध में सन्देह और जिज्ञासा करनी चाहिए और जब तक उसके सम्बन्ध में स्पष्ट (Clear) और परिस्पष्ट (Distinct) ज्ञान न हो जाय उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए।[३] आधुनिक युग में प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक विटगेन्सटाइन (Wittgenstein) ने यह घोषणा की कि वैज्ञानिक भाषा को छोड़ कर अन्य किसी रूपमें सार्थक एवं बोध गम्य रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है।[४] जो भी विज्ञान सम्मत नहीं है, वह निरर्थक है।

जैन-दर्शन में भी विज्ञान की भांति खुले और निष्पक्ष चित्त से सत्यानुसंधान पर जोर है। इसमें भी अंधविश्वास के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। जैन-दार्शनिक मणिभद्र का स्पष्ट कथन है—'न मेरा महावीर के प्रति कोई पक्षपात है और न कपिल आदि अन्य दार्शनिकों के प्रति द्वेष ही है। मुझे युक्तिसंगत वचन ही ग्राह्य हैं चाहे वे किसी के हों।'

न मे जिने पक्षपातः न द्वेष कपिलादिषु।
युक्तिमद् वचनं यस्य तद ग्राह्यं वचनं मम् ॥[५]

जैन-दर्शन विश्वास और अविश्वास सभी एकान्तिक दृष्टियों का विरोध करता है और साथ ही यह मानता है कि सत्य चाहे किसी स्रोत से आवे हमें उसे ग्रहण करना चाहिये।

इसमें आप्तोपदेश को आंख मूंद कर मानने पर बल नहीं दिया जाता है। भगवान् महावीर ने स्वयं कहा है—**णो लोगस्स सेसणं**

---

१. विटगेन्सटाइन, 'यदि कोई मुझसे यह प्रश्न करे "क्या विटगेन्सटाइन तुम "अन्तिम न्याय के दिन" में विश्वास करते हो ?" या "क्या तुम "अन्तिम न्याय के दिन" में अविश्वास करते हो ?" मैं कहूंगा—"किसी में नहीं।"—लेक्चर्स एण्ड कन्वर्सेसन ऑन साइकोलॉजी, एस्थेटिक्स एण्ड रिलीजस बिलीफ, बेसिल ब्लैकवेल; ऑक्सफोर्ड, १९६७

२. A. J. Ayer, "We say that a sentence is factually significant to any given person, if and only if, he knows how to verify the proposition which it purports to express."
—Language, Truth & Logic, Victor Gollancz, 2nd. Ed. 1960, पृ० ३५

3. Rene Descartes, Discourse on Method, in Philosophical Works of Descartes (tr) E. S. Haldan· 1931, देखिए Rule IX of the Regular

४. देखिए विटगेन्सटाइन, ट्रैक्टेटस लाजिको-फिलोसॉफिक्स, ६-५३ रॉटलेज एण्ड केगेन पॉल, लन्दन, १९२२, रसेल ने भी कहा है—
"Whatever can be known, can be know by means of Science."—History of Western Philosophy, George Allen & Unwin Ltd., Londan 1947, पृ० ७८९

५. देखिए, षड्दर्शनसमुच्चय, ४४ पर टीका, चौखम्भा संस्करण, पृ० ३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरे।[1] किसी का अनुकरण या अनुसरण न करो। सत्य को स्वयं जानो; क्योंकि उधार लिया गया सत्य मुक्त नहीं करता, उल्टे वह परिग्रह बन जाता है। इसी कारण महावीर ने शास्त्रीयता का विरोध किया। उन्होंने कहा है—**वेया अहीया न भवन्ति ताणं**।[2] (वेद को रट लेना त्राण नहीं दे सकता है।) वेद—जिसका दृष्टिकोण निगमनात्मक (Deductive) है, क्योंकि उसमें उद्घाटित (Revealed) सत्यों को जीवन में लागू करने पर जोर है—उसके विरोध में भगवान् महावीर और बुद्ध ने आगमनात्मक विधि पर बल दिया और इस बात का समर्थन किया कि मनुष्य को स्वयं अपने प्रयत्नों से सत्य को जानना चाहिए, क्योंकि सत्य की खोज, जैसा कि प्लोटिनस ने कहा है—'अकेले की अकेले की ओर उड़ान' (Flight of the alone to the alone) है। सत्य को स्वानुभव से ही जाना जा सकता है, जैसे स्वयं भोजन करने से ही भूख मिटती है। इसलिए भगवान् बुद्ध ने कहा है—**आत्मदीपो भव**। और भगवान् महावीर ने भी कहा है—'अपने द्वारा ही अपना संप्रेक्षण-निरीक्षण करें।'

संपिक्खए अप्पगमप्पयणां।[3]

भगवान् बुद्ध ने कहा था मेरी बातों को परीक्षा करके ग्रहण करो, मेरे महत्त्व के कारण नहीं।

परीक्ष्य भिक्षवो ! ग्राह्यं मद्वाचो न तु गौरवात्।

भगवान् महावीर ने तो प्रयोग और परीक्षण पर पूरा जोर दिया है। उन्होंने कहा—'तत्त्वों का निश्चय करने वाली बुद्धि से धर्म को परखो !' बिना परखे किसी चीज को नहीं मानना चाहिए।

पणण समिक्खए धम्मं, तत्तं तत्त-विणिच्छयं।[4]

इस प्रकार प्रयोग और प्रामाणीकरण की जो वैज्ञानिक दृष्टि है, जैन-दर्शन उसके सर्वथा अनुकूल है। यह बात दूसरी है कि इन्द्रियानुभव तक ही सीमित है, जबकि जैन-दर्शन के अनुसार अनुभव 'एकेन्द्रिय चेतना' से लेकर 'सर्वज्ञता' तक हो सकता है। इसका एक लम्बा विस्तार है जिसमें १° से लेकर १००° तक चेतना की सम्भावना है। इसी कारण जैन-दर्शन इन्द्रियानुभव के साथ ही साथ अन्य प्रकार के अनुभवों को भी महत्त्व देता है और मति, श्रुति, अवधि ज्ञान, मनः पर्याय, तथा केवल-ज्ञान सबों को ज्ञान का साधन मानता है।

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्।[5]

(२) **भौतिकवादी विचारधारा** (Materialism)—आधुनिक युग भौतिकवादी है। विज्ञान की प्रवृत्ति ही भौतिकवादी है क्योंकि उसकी मान्यता है कि भौतिक पदार्थ (matter) ही मूल-सत्ता है और उसी से जगत् की सभी सत्ताओं का विकास हुआ है। सम्पूर्ण जीव एवं चेतन जगत् का विकास पदार्थ से ही हुआ है।[6] आधुनिक युग में कार्ल मार्क्स ने भौतिक पदार्थ को ही मूल सत्ता माना और भौतिक तत्त्व से ही चेतना की उत्पत्ति मानी।[7]

---

१. आचारांगसूत्र
२. उत्तराध्ययनसूत्र १४/१२
३. दशवैकालिकसूत्र, चूलिका, २, १२
४. उत्तराध्ययनसूत्र, २३/२५
५. तत्त्वार्थसूत्र, १/९
६. John Keosin. "From the materialists view, the origin of life was no more accident; it was the result of matter evolving to higher levels through the inexorable working out at each level of its inherent potentialities to drive at the next level".—The Origin of life, Chapman & Hall Ltd. London, 1964. पृ० ३
७. Marks and Engels, "Feuerbach opposition of Materialistic and Idealistic outlook." Selected Works, Vol. 1, पृ० ३२ Engles ने स्पष्ट लिखा है—"Our consciousness and thinking, however suprasensuous they may seem, are the products of a material, bodily organ, the brain. Matter is not a product of mind, but mind itself is merely higher product of nature". Ludwing Feuer bach, Ch—2, quoated by Maurice Conforth, Dialectical Materialism : The Theory of Knowledge, National Book Agency, Calcutta. 1955, पृ० ३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपरेन (I. A. Oparin) ने भी १९२२ में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि धरती पर प्रथम जीव का विकास रासायनिक तत्त्वों के संयोग से हुआ।[1] अभी हाल ही में डा० हरगोविन्द खुराना ने रासायनिक तत्त्वों के सम्मिश्रण से सरलतम जीवाणु (D. N. A.) उत्पन्न करने का प्रयास किया है।[2]

जैन-दर्शन यद्यपि भौतिकवादी नहीं है, इसका जोर अध्यात्मवाद या आत्मावाद पर ही है, फिर भी यह भौतिकवाद को उचित स्थान और महत्त्व देता है। यह जीव और अजीव या आत्मा और पुद्गल (Matter) दोनों की सत्ता स्वीकार करता है। पुद्गल की इसकी धारणा आधुनिक विज्ञान के पदार्थ की धारणा से मिलती-जुलती है। पुद्गल वह है, जिसमें संगठन और विघटन होता है—जो टूटता और जुड़ता है (पूरयन्ति गलन्ति च।)।[3] आधुनिक विज्ञान भी मानता है कि पदार्थ वह है जिसमें संगठन (Fusion) और विघटन (Fission) होता है।

पुद्गल इन्द्रिय का विषय है और रूप, रस, गन्ध और स्पर्श से युक्त है।[4] जैन-दर्शन भौतिकवादियों से इस सीमा तक सहमत है कि शरीर, वाक्, मन, प्राण आदि भौतिक हैं।

शरीर वाङ्मनः प्राणापानः पुद्गलानाम्।[5]

दूसरी ओर जीव या आत्मा वह है जिसमें चेतना है—**चेतना लक्षणो जीवः।**[6] विज्ञान भी जीव और अजीव दो सत्ताओं को स्वीकार करता है। एक (जीव) जीव-विज्ञान का विषय है और दूसरा (अजीव) पदार्थ-विज्ञान का। जैन-दर्शन की जीव सम्बन्धी धारणा कुछ अंशों में जीव-विज्ञान की धारणा से मिलती है। क्योंकि यह जीव को जीवनी-शक्ति (Vital force) मानता है।[7] इस कारण यह पहाड़, वनस्पति, खनिज-द्रव्य आदि को भी सजीव मानता है। अकारण नहीं है कि आधुनिक वनस्पति शास्त्री पेड़-पौधों को सजीव मानने लगे हैं। इस संदर्भ में जगदीश चन्द्र बसु का प्रयोग प्रसिद्ध एवं सर्वविदित है।

(३) **विश्लेषणवादी पद्धति** (Analytic Method)—विज्ञान की पद्धति विश्लेषण या विभाजन की पद्धति है। इसमें जटिल वस्तुओं को विभाजित कर सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों में पर्यवसित कर के मूल तत्त्वों का पता लगाने का प्रयास किया जाता है। १९वीं सदी का विज्ञान पदार्थ का खंड-खंड करके परमाणु तक पहुंचा था। २०वीं सदी के विज्ञान ने परमाणु का भी विघटन कर डाला है और पाया है कि परमाणु भी यौगिक है और वह इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन, पॉजीट्रोन आदि वैद्युतिक शक्तियों का संगठन है; अतएव अब विज्ञान शक्तिवाद की ओर झुक रहा है।

जैन-दर्शन की पद्धति विश्लेषणात्मक और संश्लेषणात्मक दोनों है। विश्लेषण की प्रक्रिया से यह भी अणु तक पहुंचा है—**भेदादणुः।**[8] अणु की इसकी धारणा पाश्चात्य विज्ञान के अणु के समकक्ष नहीं है, क्योंकि अणु अविभाज्य तत्त्व है जबकि पदार्थ विज्ञान का अणु विभाज्य सिद्ध हो चुका है। फिर भी, पदार्थ का जो चरम अविभाज्य तत्त्व है, उसे ही जैन-दर्शन अणु मानता है।[9] जैन परमाणुवाद डाल्टन के परमाणुवाद के प्रायः समकक्ष है। परमाणुवाद के संबंध में जैन-दर्शन की जो महत्त्वपूर्ण देन है, वह है—(१) परमाणुओं के संगठन का नियम। जैन-दर्शन में परमाणुओं के संगठित होने के तीन नियम बताए गए हैं—(क) भेद, (ख) संघात, और (ग) भेद-संघात;[10] जो पदार्थ विज्ञान

---

१. Oparin, I. A., Life : Its Nature, Origin and Development, Acadamic Pres, New York, 1962

२. Dr. H. G. Khorana, Pure and Applied Chemistry, 1968

३. सर्वदर्शनसंग्रह, ३

४. रूपिणः पुद्गलाः। तत्त्वार्थसूत्र ५/५
रूपरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः। तत्त्वार्थसूत्र ५/२३
रूपिणः पुद्गलाः रूपं मूर्त्तिः रूपादि संस्थानपरिणामः।
रूपमेषामस्तीति रूपिणः मूर्त्तिमन्तः। सर्वार्थसिद्धि, अध्याय ५

५. तत्त्वार्थसूत्र, ५/१९

६. उपयोगोलक्षणम्, तत्त्वार्थसूत्र, २/८

७. देखिए Sinclair Stevenson, The Hert of Jainism, Oxford University Press, London, 1915, पृ० ९५

८. तत्त्वार्थसूत्र, ५/२७

९. कुन्दकुन्दाचार्य, सव्वेसिं खधाणां जो अन्तो ते वियाण परमाणू।
सो सस्सदो सस्सदो असद्धो, एक्को अविभाजी मुत्तिभवो॥ पंचास्तिकाय, गाथा-७७
(अर्थात् स्कन्धों का जो अन्तिम भेद है, वह परमाणु है, वह अविनाशी शब्द रहित, विभाग रहित और मूर्त्तिक है।)

१०. उमास्वामी, भेदसंघातेभ्यः उत्पद्यन्ते। तत्त्वार्थसूत्र, ५/२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के 'इलेक्ट्रो वैलेन्सी,' 'को-वैलेन्सी' और 'को ऑर्डीनेट को-वैलेन्सी' की धारणा से मिलते-जुलते हैं। जैन-दर्शन के अनुसार विषम गुण वाले परमाणु आपस में संगठित होते हैं। स्निग्ध और रूक्ष गुण वाले परमाणुओं का बन्धन होता है।[1] पदार्थ-विज्ञान भी मानता है कि विपरीत चार्ज वाले परमाणुओं का संयोग होता है। (२) जैन-दर्शन की मान्यता है कि समगुण वाले परमाणुओं का भी संगठन हो सकता है यदि उनकी शक्ति की मात्रा विषम हो, अर्थात् उनमें एक की अपेक्षा दूसरे में कम से कम दो इकाई शक्ति अधिक हो (जैसे १:२, २:४, ४:६, इत्यादि)।[2] पदार्थ-विज्ञान भी मानता है कि समान चार्ज वाले परमाणु भी संगठित हो सकते हैं बशर्ते उनका 'स्पिन' भिन्न हो। (३) जैन दर्शन के अनुसार जघन्य गुण या न्यूनतम शक्ति वाले परमाणुओं का संगठन नहीं हो सकता।[3] आधुनिक विज्ञान भी मानता है कि निम्नतम स्तर (Ground Level) के परमाणुओं का संगठन नहीं हो सकता है। इससे स्पष्ट है कि जैन पदार्थ-विज्ञान कितनी दूर तक आधुनिक विज्ञान के समान्तर चल सकता है।[4]

अनिश्चयवाद बनाम स्याद्वाद एवं अनेकान्तवाद :

(Principle of Uncertainty vs-Syadvada & Anekantavada)

१९वीं शती के विज्ञान के लिए परमार्थ सत्ता के सम्बन्ध में निरपेक्ष रूप से कुछ कहना सम्भव था। परन्तु आधुनिक विज्ञान के लिए ऐसा कुछ कहना सम्भव नहीं हो रहा है; क्योंकि विज्ञान यह अनुभव करने लगा है कि परमार्थ सत्ता का कोई एकान्तिक स्वरूप नहीं है। वह कभी कण (Particale) की भांति कार्य करता है तो कभी लहर या तरंग (wave) की भांति। अतएव अब निरपेक्ष रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि 'पदार्थ परमाणु कण है' और न यह ही कहा जा सकता है कि 'पदार्थ लहर या शक्ति है।' पदार्थ की धारणा में भूत (Matter) और शक्ति (Energy)—दोनों की धारणा निहित हो गई है। इसलिए 'एटम' के स्थान पर 'क्वांटम' शब्द का आविष्कार किया गया है। साथ ही, परमार्थ तत्त्व की स्थिति को जब ठीक-ठीक मापते हैं, तो उसका वेग ठीक से मापा नहीं जा सकता (क्योंकि वह बदल जाता है) और यदि वेग को ठीक से मापते हैं, तो स्थिति ठीक से नहीं मापी जा सकती है (क्योंकि स्थिति बदल जाती है)। यह तथ्य हाई-जेनवर्ग (Heisenburg) के 'अनिश्चयता सिद्धान्त' (Principle of Uncertainty) में व्यक्त हुआ है।

जैन दर्शन की पुद्गल की धारणा आधुनिक क्वान्टम पदार्थ-विज्ञान के क्वान्टम, (Quantum) की धारणा से मिलती-जुलती है, क्योंकि इसकी धारणा में भी भूत (Matter) और शक्ति (Energy) दोनों की धारणा निहित है। साथ ही, आज विज्ञान जिस स्थिति में आ पहुंचा है, वह स्याद्वाद और अनेकान्त की स्थिति है। जैन दर्शन भी मानता है कि पदार्थ का स्वरूप एकान्तिक नहीं है। उसके अनन्त गुण धर्म हैं—**अनन्तधर्मकं वस्तु**। फिर विज्ञान, परमार्थ सत्ता के सम्बन्ध में निरपेक्ष निर्णय नहीं दे पा रहा है कि वह कण है या लहर। उसे कहना पड़ रहा है कि एक दृष्टिकोण से वह कण है; दूसरे दृष्टिकोण से लहर है, या एक प्रसंग में वह कण की भांति कार्य करता है और दूसरे प्रसंग में लहर की भांति। स्याद्वाद का प्रतिपादन भी इसी उद्देश्य से हुआ है। इसके अनुसार प्रत्येक निर्णय सापेक्षत: सत्य है, इसलिए किसी भी वस्तु के विषय में 'ऐसा ही है' न कहकर 'स्यात् ऐसा है'—कहना अधिक समीचीन है। परमतत्त्व के विषय में विज्ञान भी यही कह रहा है कि 'स्यात् यह कण है', 'स्यात् यह लहर है'। अतएव अब विज्ञान जैन दर्शन के स्याद्वाद के दर्शन की स्थिति में आ गया है।

प्रतीतिवादी दर्शन (Phenomenalism) :

आधुनिक विज्ञान प्रतीतिवादी है। इसके अनुसार हमारा ज्ञान केवल प्रतीति (Phenomena) या जो घटित हो रहा है, उसी का हो सकता है। हम निरपेक्ष सत्ता को नहीं जान सकते हैं। आधुनिक दर्शन मानने लगा है कि निरपेक्ष की धारणा केवल कल्पना (Myth) या रिक्त शब्द है। हम केवल सापेक्ष सत्ताओं को ही जानते हैं। निरपेक्ष सत्ता (Absolute) की धारणा केवल भाषा के गलत प्रयोग से उत्पन्न हो जाती है।[5] जैन-धर्म की प्रवृत्ति भी निरपेक्ष सत्ता विरोधी है। इसके अनुसार निरपेक्ष सत्ता अधिक से अधिक विभिन्न सापेक्ष पहलुओं का योगफल है। यह सापेक्षता के परे जाकर किसी निरपेक्ष सत्ता में विश्वास नहीं करता है।

---

१. स्निग्ध: रुक्षत्वाद्बन्ध:। तत्त्वार्थसूत्र, ५/३३

२. गुण साम्ये सादृशानम्।
द्वयधिकादिगुणानां तु। बन्धेऽधिको पारिणामिकौ। तत्त्वार्थसूत्र, ५/३६, ३७, ३८

३. न जघन्य गुणानाम्। तत्त्वार्थसूत्र, ५/३४

४. जैन धर्म और जीव विज्ञान में समता के लिए देखिए,
Dr. H. P. Verma and Dr. A. P. Jha, Jaina Vision and Genetic Research, 1975, ज्ञानम्, भागलपुर

५. देखिए A. J. Ayer, Language Truth and Logic, 2nd Ed., Victor Gollancz, London, 1946

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विज्ञान केवल प्रतीति तक ही सीमित है। इसके अनुसार हम केवल छाया ही देख पाते हैं, द्रव्य नहीं। सर एडिंगटन ने लिखा है :

"The frank realization that physical science is concerned with the world of shadows is one of the most significant advances···In the world of physics we watch a shadow-performence of the drama of familiar life. The shadow of my elbow rests on the shadow-table as the shadow-ink flows over the shadow-paper."[1]

जैन दर्शन का दृष्टिकोण सर्वग्राही है; यह द्रव्य और प्रतीति दोनों पहलुओं का समन्वय करता है। इसके अनुसार द्रव्य में गुण और पर्याय दोनों हैं— **गुणपर्य्यायवद् द्रव्यं**।[2] गुण की दृष्टि से द्रव्य शाश्वत सत्ता है और पर्याय की दृष्टि से वह प्रतीति है। अतएव जैन-दर्शन सत्ता (Noumenon) और प्रतीति (Phenomena) दोनों को मानता है। एक दृष्टि से विज्ञान भी इन दो दृष्टियों को अपनाता है। एक दृष्टि से वह मात्रा और शक्ति को नित्य मानता है और दूसरी दृष्टि से जगत् को उनका प्रतिभाष मानता है। लव्हे जियर (Lavoisier) ने 'शक्ति-नित्यता नियम' की व्याख्या करते हुए लिखा है—"Nothing can be creatad and in every process there is just as much substanee (quantity of matter) present before and after the process has taken place. There is only a change or modification of matter."[3] जैन दर्शन भी मानता है कि जगत् के तत्त्व शाश्वत हैं और जगत् केवल उनके रूपान्तरण से उद्भूत होता है। अतएव द्रव्य की दृष्टि से यह अपरिवर्तनशील और सनातन है तथा लोक अकृत्रिम है—प्रकृत स्वभाव से ही उद्गम, विकास और विनाश होता है। 'मूलाचार' में कहा गया है—"यह लोक अकृत्रिम है—प्रकृत स्वभाव से उद्भूत है। जीव-अजीव द्रव्यों से भरा है और ताल वृक्ष के समान खड़ा है।"

लोओ अकट्टिमो खलु अणाई णिहणो सहाव णिप्पणो।
जीवाजीवोहिं भरोणिच्चो ताल सक्ख संठाणो॥"[4]

अतएव जगत् सम्बन्धी जैन-दर्शन की धारणा वैज्ञानिक धारण के समकक्ष है।

नास्तिकवादी धर्म दर्शन (Atheistic Philosophy) :

विज्ञान के प्रभाव के कारण आधुनिक युग की प्रवृत्ति अनीश्वरवादी है। विज्ञान मानता है कि जगत् का स्रष्टा एवं संचालक कोई ईश्वर नहीं है। वह प्राकृतिक नियमों से विश्व की व्याख्या करता है। यदि जगत् का कोई सृष्टिकर्त्ता माना जाय जो असृजित है, तो जगत् को ही असृजित और शाश्वत मानने में क्या हानि है ?[5] जैन-दर्शन की भी यही मान्यता है।

फ्रॉयड आदि मनोविश्लेषकों ने माना है कि ईश्वर केवल हमारी अतृप्त इच्छा और भय की उपज है। ईश्वर की धारणा शैशव-कालीन पिता के अनुभव से आती है। ईश्वर केवल पिता का ही प्रक्षेपेण है—'पिता की ही प्रतिमा है।' (God is nothing but father's image)[6]। मार्क्स ने ईश्वर को आर्थिक-प्रताडना की उपज माना है और यह मत प्रतिपादित किया है कि आर्थिक-संकट, अभाव और विपन्नता में जीने वाला सामर्थ्यहीन मनुष्य एक अतिप्राकृतिक सहायक की कल्पना कर लेता है। अतएव "धर्म कठिन जीवन जीने वालों के लिए चैन की एक सांस है, हृदयहीन संसार का हृदय है, अनात्मिक परिस्थितियों की आत्मा है। जनता के लिए अफीम है (Religion is opium of the people)[7]। इसके नशे में वह अपना दुःख-दर्द भूलने का प्रयास करता है। शासक की प्रतिमा में मनुष्य विश्व के एक शासक की प्रतिमा गढ़ लेता है। जैन दर्शन भी निरीश्वरवादी है। इसके अनुसार जगत् का सृष्टिकर्त्ता कोई ईश्वर नहीं है। ईश्वर की धारणा मनुष्य की सामर्थ्यहीनता

---

१. The Nature of the Physical World, quoted in Mahrishis Gospel, Book-I and II, Shri Ramanasharm, Tiruvarrnamalai

२. तत्त्वार्थसूत्र, ५/३८

३. श्री दुलीचन्द्र जैन द्वारा "जैन दर्शन में पुद्गल-द्रव्य और परमाणु-सिद्धान्त" चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, अ० भा० दि० जैन महिला परिषद्, १९५४, पृ० २६३ पर उद्धृत

४. मूलाचार, ८/२८

५. देखिए, बर्ट्रेन्ड रसेल का लेख—
'The Existence of God', (Ed.) John Hick, Macmillan Co, New York, 1964, पृ० ४५

६. देखिए, Freud, 'Future of an Illusion', 1953 तथा 'Civilization and it's Discontents', 1930

७. मार्क्स, इन्ट्रोडक्शन टू ए क्रिटिक ऑफ हीगेल्स फिलॉसफी ऑफ लॉ। क्रिस्टोफर कॉडवेल द्वारा फर्दर स्टडीज इन डाइंग कल्चर, मंथली रिव्यू प्रेस, लन्दन १९७१, पृ० ७५ पर उद्धृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और साहस के अभाव का द्योतक है। यह राजतन्त्र का परिणाम है।[1] राजा की उपमा पर ही मनुष्यों ने संसार के एक शासक की कल्पना कर ली है। आधुनिक युग की प्रवृत्ति स्वावलम्बन और मानवतावाद की प्रवृत्ति है। ऑगस्ट कॉमटे (August Comte) ने माना है कि विज्ञान का लक्ष्य केवल ज्ञान के लिए ज्ञान पाना नहीं, बल्कि उसका लक्ष्य मानवता की—जो दुःखी और सन्तृप्त है,—सेवा करना है, उसके कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना है।[2] हक्सले, फ्रायड, ब्रर्ट्रेन्ड रसेल, मैक्स ओटो, आदि सभी विज्ञानवादी चिन्तकों का यही मत है।[3] कॉमटे ने माना है कि ईश्वरवाद मनुष्य के विकास में बाधक है, क्योंकि यह मनुष्य को आवश्यक रूप से लोभी बनाता है। जैन दर्शन में भी माना गया है कि ईश्वर की धारणा मनुष्य के विकास में बाधक है। आचार्य अमितगति ने लिखा है—"मनुष्य अपने कर्म के अनुसार शुभ-अशुभ फल पाता है। यदि दूसरे से कुछ प्राप्त हो सकता, तो अपना कर्म निरर्थक हो जाता है। निजार्जित कर्मों को छोड़कर कोई किसी को कुछ दे नहीं सकता, अतएव कोई दूसरा दे सकता है—इस धारणा को मन से निकाल देना चाहिए।"[4] भगवान महावीर ने कहा है—"मनुष्य स्वयं अपने सुख-दुःख का कर्त्ता है और स्वयं अपने सुख-दुःख का विनाशक ! वह दुष्प्रवृत्ति और सुप्रवृत्ति के अनुसार स्वयं अपना शत्रु है, और स्वयं अपना मित्र।"

अप्पा कत्ताविकत्ता य दुक्खाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तंमित्तं य दुप्पट्ठिय सुपट्ठिय॥[5]

जैन दर्शन का लक्ष्य भी स्वावलम्बन, आत्मविकास और मानवता का कल्याण है। परस्पर एक-दूसरे का उपकार ही जीव का धर्म है।

परस्परोग्रहो जीवानाम्।[6]

व्यक्तिवादी मनोवृत्ति (Individualistic Attitude) :

विज्ञान की विश्लेषणवादी मनोवृत्ति ने पदार्थ के क्षेत्र में परमाणु की धारणा और समाज के क्षेत्र में व्यक्तिवादी विचारधारा को जन्म दिया जिसके अनुसार व्यक्ति ही सत्य है। व्यक्तिवाद का विकृत रूप स्वार्थवाद है जिससे आधुनिक युग ग्रस्त है। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने खोलों में बन्द है। कोई अपना स्वार्थ दूसरे के लिए त्यागने को तैयार नहीं है। बेन्थम ने कहा है—'सम्भव है कि स्वर्ग का राज्य पृथ्वी पर उतर आए, पर सपने में भी मत सोचो कि कोई मनुष्य तुम्हारे लिए कानी उंगली भी हिलाएगा, यदि वैसा करने में भी उसका कुछ स्वार्थ निहित न हो' (It is possible that heaven may come down to the earth, but dream not that man will move even his little finger to serve you, unless in doing so some of his own gains be obvious to him.) यह स्वार्थवाद का नाम ताण्डव है जिसमें हर व्यक्ति अपने को अकेला (Lonely) अनुभव कर रहा है। आधुनिक युग में यह भाव गहरा होता जा रहा है कि—'मैं किसी का नहीं है। कोई मेरा नहीं है' और यह भावना मनुष्य के परम विषाद का कारण बन गई है। आज प्रत्येक मनुष्य एक-दूसरे के प्रति शंकालु है।

बात पराये की मत पूछो, हमें हाय अपनों से भय है।

डा० राम मनोहर लोहिया ने लिखा है—"स्वार्थ अपने-अपने कुटुम्ब के दायरे में तो उदार रहता है, लेकिन मानव कुटुम्ब की

---

१. देखिए, कैलाशचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री, जैन-धर्म, भा० दि० जैन संघ, मथुरा, पृ० ११६

२. Comte, 'The Philosophy of Positivism'

३. देखिए, रसेल—"A Free man's Worship", Mysticism and Logic, George Allen & Unwin Ltd. 1951. "What I believe", The besic writings of Burtrand Russell, George Allen & Unwin, London, 1946

४. आचार्य अमितगति—"स्वयं कृत: कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीय लभते शुभाशुभं।
परेणदत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं सदा॥
निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोपि कस्यापि ददाति किंचन।
विचार यन्नेवमन्यमानस: परोददाति विमुच्य शेमषीं॥"

५. उत्तराध्ययनसूत्र, २०/३७

६. तत्त्वार्थसूत्र, ५/२१

जैन मानवतावाद की विस्तृत व्याख्या के लिए देखिए मेरी पुस्तिका—'जीव से जिन की ओर', ज्ञानम्, भागलपुर, १९७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशालता के आगे संकीर्ण हो जाता हैं।"[1] अब तो स्थिति यह है कि मनुष्य कुटुम्ब के दायरे में भी उदार नहीं रहा, वह अपने आप ही में बन्द है। परिणाम यह है कि परिवार भी विघटित होता जा रहा है। प्रत्येक मनुष्य एक अपरिचित और बाहरी व्यक्ति (Outsider) की तरह जी रहा है।[2]

भगवान् महावीर ने व्यक्तिवाद का स्वस्थ रूप प्रस्तुत किया है जिसके अनुसार हर व्यक्ति का व्यक्तित्व मूल्यवान् है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में साध्य है और उसकी नियति वह बनना है, जो वह वास्तव में है। उसे किसी के समक्ष आत्म-समर्पण करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि अपने आप पर विजय पाकर स्वस्थ और आत्मवान् होना है। भगवान् महावीर का दृष्टिकोण गणतान्त्रिक है अतएव वे 'साध्यों का साम्राज्य' (Kingdom of ends) बसाना चाहते हैं जिसमें सभी राजा हों—सभी ईश्वर हों—(अहमिन्द्र)। उनकी धारणा है कि प्रत्येक आत्मा परमात्मा है, किसी परमात्मा का खण्ड-अंश होने के कारण नहीं, बल्कि अपने अन्दर अनन्त शक्तियों (अनन्त चतुष्टय) की उपस्थिति के कारण। प्रत्येक व्यक्ति को उसी प्रकार विकसित हो जाना है जैसे किसी बगीचे में अलग-अलग किस्म के फूल खिल जाते हैं और सबों के खिलने में ही बगीचे की शोभा और सौन्दर्य है। यह व्यक्तिवाद मिल, काण्ट या सार्त्र के व्यक्तिवाद के समकक्ष है। मिल ने कहा था —'जबकि दस पागल व्यक्तियों में नौ व्यक्ति निरीह मूर्ख होते हैं, वह दसवां अधिक महत्त्व का है, क्योंकि वह कोई सुकरात या जीसस हो सकता है—जिसे दुनिया ने न पहचाना हो।' अतएव प्रत्येक व्यक्ति का समान मूल्य है। किसी के व्यक्तित्व का अनादर नहीं होना चाहिए। काण्ट ने भी कहा था, 'मानवता चाहे तुम्हारे अन्दर हो या दूसरे में उसे सदा साध्य समझो साधन नहीं।'[3] सार्त्र के अनुसार 'प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है, नहीं—स्वतन्त्रता ही मनुष्य हैं।' (Freedom is man)। प्रत्येक व्यक्ति अनुपम है, अतएव किसी को दूसरे के ढांचे में नहीं ढलना है। 'दूसरा ही नर्क है।' (The other is hell)।

वर्त्तमान बिडम्बना (The Present Crisis) :

यह सत्य है कि विज्ञान ने दिक् और काल पर विजय पा ली है। और वैज्ञानिक तकनीक ने मनुष्य को चन्द्रमा पर पहुंचा दिया है। विज्ञान ने मनुष्य के हाथ में परमाणु की असीम शक्ति दी है जिससे भौतिकता के मामले में मनुष्य अत्यन्त समृद्ध हो गया है। परन्तु आत्मिकता और आत्मीयता के क्षेत्र में वह अत्यन्त विपन्न हो गया है। उसकी महत्त्वाकांक्षा ने उसे भीतर से तोड़ कर रख दिया है। डा० राधाकृष्णन् ने लिखा है, "मनुष्य जो बनना चाहता है, और जो है, उसके बीच विनाशकारी असन्तुलन है। यह विरोध हमारी अशांति का कारण है। हम बात समझदार व्यक्तियों की तरह करते हैं, पर व्यवहार पागलों की तरह से।"[4] मनुष्य ने बाह्य पदार्थ को तो अन्त तक जान लिया है, परन्तु उसे अपने अन्तर का अपने आपका कोई ज्ञान नहीं है। वह अपने सामने ही दीन-हीन हो गया है; वह अपने-आप से टूट गया है। आत्मा अज्ञान के कारण वह बाहर-बाहर शरण की तलाश में भटकता है, परन्तु बाहर उसे कहीं शरण नहीं मिल सकती है। भगवान् महावीर के अनुसार बाहर की कोई भी वस्तु—धरा-धाम, धन-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र कोई हमारा शरण नहीं हो सकते।[5] मनुष्य मात्र आत्मा में, धर्म में शरण पा सकता है।[6] परन्तु आधुनिक मनुष्य कभी भी अपने आप में, धर्म में है ही नहीं। वह सोते-जागते सदा बाहर है। प्रत्येक व्यक्ति खौलता हुआ इन्सान है, जिसने ढक्कन स्वरूप सभ्यता का मुखौटा पहन रखा है। यह खौलना जब तक ९९.९ तक होता तब तक वह व्यक्ति सामान्य कहलाता है और यही जब १००° तक पहुंच जाता है, तो वह विक्षिप्त या असामान्य करार दिया जाता है। वस्तुतः तथाकथित सामान्य और पागल व्यक्ति में अन्तर मात्र .१° का है। फ्रायड ने कहा है कि 'आधुनिक मनुष्य सैमसन की भांति जंजीरों में जकड़ा हुआ कराह रहा है, परन्तु एक दिन वह सभ्यता के खम्भों को उखाड़ फेंकेगा और पुनः बर्बर अवस्था में लौट जाएगा। वर्त्तमान सभ्यता ने मनुष्य में बहुत असंतोष

---

१. सतीश वर्मा, "बड़े शहरों का प्रसाद : बढ़ता तनाव", धर्मयुग, ९ फरवरी, १९७५, पृ० ७ पर उद्धृत

२. Colin Wlson, The Outsider, Pan Books Ltd, London, 1970

३. Kant, "Treat humanity either in thine own person or in others always as an end and never as a means."—The Critique of Practical Reason

४. सतीश वर्मा, धर्मयुग, ९ फरवरी, १९७५, पृ० ६ पर उद्धृत

५, "दाराणि य सुया येव, मित्ता य तह बंधवा। जीवन्तमणु जीवन्ति, मयं नाणुव्वयन्ति य॥" —उत्तराध्ययनसूत्र, १८/१४
"वित्त पसवो य नाइओ, तं बाले सरणं ति मन्नई। एते मम तेसुविअहं, नो ताणं सरणं न विज्जई॥" —सूत्रकृतांगसूत्र, १/२/३/१६

६. "जरा मरणं वेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो, पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं॥"—उत्तराध्ययन सूत्र, अध्याय २३, गाथा ६८
अर्थात् जरा-मरण के तेज प्रवाह में बहते हुए जीव के लिए धर्म ही एकमात्र दीप, प्रतिष्ठा, गति और उत्तम शरण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न कर दिया है।'[1] प्रत्येक व्यक्ति सदा द्वन्द्व, संघर्ष और आन्तरिक युद्ध में जी रहा है। इसका प्रतिफल है—विगत सदी के दो विश्व-युद्ध ! वास्तव में बाह्य तो अन्तस् की प्रतिच्छाया मात्र है। विज्ञान ने मनुष्य को शक्ति तो दी है, परन्तु आत्मा छीन ली है; उसने सुख-सुविधा तो बढ़ाई है, परन्तु नींद, विश्राम, शान्ति और आनन्द छीन लिया है उसने दवाइयां तो दी हैं, परन्तु मानवता को युद्ध और विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। शान्ति की परिभाषा करते हुए ब्रट्रेंड रसेल ने लिखा है—कि "एक युद्ध की समाप्ति और दूसरे युद्ध की तैयारी उन दोनों के बीच के अन्तराल को शान्ति कहते हैं।" आइन्सटीन ने कहा था, "मैं तीसरे विश्वयुद्ध के विषय में तो कुछ नहीं कह सकता, पर चौथे विश्वयुद्ध के विषय में अवश्य ही निश्चय पूर्वक कह सकता हूं कि वह पत्थर के हथियारों से लड़ा जाएगा।" यह है जगत् की वर्त्तमान परिस्थिति और मानव की वस्तु-स्थिति ! आज मानवता बीमार है, रुग्ण है, पागलपन की कगार पर खड़ी है। मनोविश्लेषक युंग ने लिखा है—"मनोचिकित्सकों को अवश्य स्वीकार करना होगा कि 'अहम्' बीमार है, क्योंकि वह समग्र से टूट गया है और मानवता के साथ ही साथ आत्मा से उसका सम्बन्ध विच्छेद हो गया है।"[2] वह भोग के पीछे दीवाना है, भोग से जब तृप्ति नहीं मिलती, तो वह दमन की ओर, आत्म-पीड़न की ओर, मुड़ता है और इस प्रकार द्वन्द्व-दुःख का शिकार बना हुआ है। पहले इस द्वन्द्व से घबड़ा कर वह ईश्वर की शरण में जाता है परन्तु आधुनिक विज्ञान ने वह काल्पनिक सहारा भी उससे छीन लिया है। अतएव मनुष्य निराधार है और अकेला बादल की भांति हवा पर डोल रहा है, जिसकी न धरती अपनी है, न आकाश ! निराशा में वह अपने आप से झगड़ पड़ता है और अपने आप को ही तोड़ने लगता है। उसकी वृत्ति आत्मघाती हो गयी है। औद्योगीकरण ने जीवन को यान्त्रिक और असहज बना दिया है।

इस दुश्चक्र से निकलने का उपाय भगवान् महावीर के पास है। उनके अनुसार बाहर सहारे की तलाश निरर्थक है। जो भी 'पर' है, वह हमारा सहारा नहीं हो सकता, चाहे वह पदार्थ हो या परमात्मा। आत्मा ही एकमात्र सहारा है। स्वयं को छोड़कर बाहर कोई भी सहारा नहीं हो सकता, अतः सर्वप्रथम बाहर के सभी सहारों का भ्रम-भंग आवश्यक है। दूसरी बात यह कि जीवन जो इतना असहज हो गया है, उसे सहज, स्वाभाविक रूप में लाना आवश्यक है। इसके लिए महावीर ने 'प्रतिक्रमण' का रास्ता सुझाया है। जीवन में जो इतना दुःख-द्वन्द्व है, वह गलत अभ्यास (कन्डिशनिंग) का परिणाम है अतएव 'तप' के माध्यम से उसे मिटाकर, फिर सहज स्थिति में लाने की आवश्यकता है। साथ ही, 'ध्यान' के माध्यम से अचेतन मन से उतरकर उसमें अज्ञान के कारण आश्रित संस्कारों, ग्रन्थियों का उच्छेद कर, ग्रन्थियों से मुक्त होना—'निर्ग्रन्थ' होना आवश्यक है और अन्ततः आत्मा में स्थित होना—'सामायिकी'—यही परम शान्ति आनन्द और मुक्ति का मार्ग है। धर्म का यह स्वरूप पूर्णतः वैज्ञानिक है और विज्ञान के दोषों को दूर करने में सक्षम है। यह धर्म प्रायोगिक है—इसका प्रयोग-स्थल आत्मा है। यह धर्म कर्मकाण्ड या विश्वास (Ritual & Dogma) नहीं, बल्कि मनोचिकित्सा (Psycho-Therapy) का साधन है जिससे पूर्व संस्कारों का क्षय (निर्जरा) और नवीन संस्कारों का आश्रव अवरुद्ध (संवर) हो जाता है, युंग, आदि ने माना है कि अचेतन के प्रति सजग होकर उसे रिक्त करके ही मनुष्य मानसिक ग्रंथियों से मुक्त हो सकता है,—स्वस्थ, शान्त और आनन्दित हो सकता है। इस प्रकार आत्मानुसन्धान ही एकमात्र मार्ग है। जब भीतर शान्ति और आनन्द हो, तो बाहर भी वही विकीर्ण होगा ही, अतएव युद्ध से निवृत्ति का भी यही एकमात्र उपाय है। महावीर के मार्ग पर चल कर ही मानवता युद्ध और विनाश से मुक्त हो शान्ति, शक्ति, आनन्द व मुक्तिलाभ कर सकती है।

---

१. S. Freud, Civilization and its Discontents, Hogarth Press, 1930

२. Jung, "The psychotherapist must even be able to admit that the ego is ill, for the very reason that it is cut-off from the whole, and has lost its connection with the mankind as well as the spirit."—Modern Man in Search of Soul, पृ० १४१

फिर देखिए, Ralph Harper, "There are two sources of solitude and its agony : being cut-off from other men and being cut-off from God." The Seventh Solitude, The John Hopkins Press, Baltimore, Marry Land, America. 1965, पृ० १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org